1857 की क्रान्ति : एक सिंहावलोकन

डॉ0 बैकुण्ठ नाथ शर्मा

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि 1857 की क्रान्ति के बारे में इतिहासकारों में अनेक मतभेद हैं। वास्तव में इसका एक मूल कारण यह भी हैं कि हमारे देश में इतिहास लेखन की कभी कोई परम्परा नही रही और कुछ तथा कथित इतिहास कथाकारों ने मिथकों को आधार मान कर अपने अधकचरे लेखन द्वारा इस सम्बन्ध में अनेक नयी भ्रान्तियों को जन्म दिया है, जिसके कारण यह विषय और अधिक जटिल और विवादास्पद बन गया है क्योंकि इस गम्भीर विषय पर आजतक किसी ने उचित शोध कार्य करके वास्तविक तथ्यों को जनता के सामने लाने की आवश्यकता नही समझी और सदैव अपना हित साधने और अपना उल्लू सीधा करने के लिये इतिहास को तोड़ मरोड़ कर जनता के सामने प्रस्तुत किया जाता रहा ताकि किसी प्रकार अपनी कुर्सी बचायी जा सके और राजसत्ता पर अपनी पकड़ निरन्तर मज़बूत बनी रहें। यही एक मुख्य कारण है कि आजतक हम एतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध करने में असमर्थ है कि अयोध्या में विवादित ढ़ाँचा वास्तव में राम मन्दिर था या फिर बाबरी मस्जिद और मध्य प्रदेश के भोजशाला में स्थित विवादित स्थल वास्तव में मालवा के राजा भोज द्वारा निर्मित देवी सरस्वती का मन्दिर है या फिर सूफी संत कमालउद्दीन चिश्ती की मज़ार।

हमारे देश में ऐसे अनेक उदाहरण है पर इस आलेख में उन सब की विस्तार से चर्चा करना सम्भव नहीं है। यहां पर सुधी पाठकों को विशेष रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि स्वतंत्रता से पूर्व हमारा देश अनेक छोटी–छोटी रियासतों और रजवाड़ो मे बंटा हुआ था। जिनके शासक राजा, महाराजा और नवाब अपने राज्यो ं की सीमायें बढ़ाने के लिये निरन्तर एक दूसरे पर आक्रमण किया करते थे और उनके दरबारों मे भाट, चारण और चाटुकार उनकी प्रशंसा में उनकी वीरता, पराक्रम और शौर्य की गाथाओं का गुणगान किया करते थे ताकि वह उनके कृपापात्र बने रहें और अपना जीवनयापन मौज मस्ती के साथ करते रहें। उस समय देश और राष्ट्र क्या होता है न तो इसकी किसी के पास कोई कल्पना थी और न ही कोई चिन्ता थी। एक आम आदमी का नज़रिया काफ़ी संकीर्ण हुआ करता था और वह बहुत दूर की सोचना कभी गंवारा नहीं करता था। उसकी इच्छाये बहुत अधिक सीमित हुआ करती थीं।

अतः 1857 की क्रान्ति की पृष्ठभूमि को उचित रूप से समझने के लिये तथा उसका सही मूल्यांकन तथा निष्पक्ष विश्लेषण करने के लिये हमे इससे सम्बन्धित इतिहास की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं पर एक विहंगम दृष्टि डालनी होगी ताकि हम किसी उचित निष्कर्ष पर पहुंच सकें। यह सर्वविदित है कि अंग्रेज़ भारत में मुख्य रूप से व्यापार करने के उद्देश्य से आये जिसके लिये उन्होने इंग्लैड की महारानी एलिज़ेबेथ प्रथम (1553–1603) के हस्ताक्षर युक्त चार्टर के द्वारा 31 दिसम्बर सन् 1600 को लन्दन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी नाम की एक संस्था का गठन किया। सर टॉमस रो नाम का प्रथम अंग्रेज़ राजदूत मुग़ल सम्राट जहांगीर (1605–1627) के शासन काल मे सन 1618 के आस पास लन्दन से भारत आया और आगरा में मुग़ल सम्राट के दरबार में उपस्थित होकर उनसे व्यापार करने की अनुमति प्राप्त की।

उस समय तक फ्रांसीसी और पुर्तगाली व्यापार करने के लिये भारत में अपने पैर पसार चुके थे और अपनी चौकियों को विधिवत स्थापित कर चुके थे। अपने अपने व्यापारिक हितों को लेकर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों तथा पूर्तगालियों में निरन्तर युद्ध हुआ करते थे, जिसके कारण अंग्रेज़ों ने कलकत्ता (कोलकता) को ईस्ट इण्डिया कम्पनी का

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

मुख्यालय बनाया और धीरे–धीरे भारत में अपनी पैठ मज़बूत की और अपनी सुरक्षा के लिये भारत में योरोपियन सेना की टुकड़ियों की तैनाती प्रारम्भ की।

सन् 1757 के प्लासी के युद्ध में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को उसके सिपाहसालार मीर जाफ़र से मिलकर अंग्रेज़ों ने उसको परास्त किया जिसमें मीर जाफ़र ने सिराजुद्दौला को मार डाला। मीर जाफ़र के इस कृत्य से प्रसन्न होकर अंग्रेजो ने उसको बड़ी चतुरायी के साथ बंगाल का नवाब बना दिया जिसको बाद में उसके दामाद मीर कासिम ने एक षडयंत्र रच कर मार डाला।

उस समय राजदरबारों में इस प्रकार के षडयंत्र काफ़ी हुआ करते थे जिनमें लौडियों के पुत्र और नाखांदे व्यक्ति भी जोड़ तोड़ करके अपने को राजा या नवाब घोषित कर दिया करते थे जिस प्रकार मोहम्मद गौरी के आक्रमण के पश्चात उसका एक गुलाम कुतुबउद्दीन ऐबक दिल्ली का सम्राट बन बैठा था और उसने अपना झण्डा बुलन्द करने के लिये पृथ्वीराज चौहान के किले के प्रांगण में कुतुबमीनार तामीर करवा दी। बंगाल की इस ऊहापोह की स्थिति का पूरा लाभ उठाते हुए रार्बट क्लाइव ने अपने को बंगाल का गर्वनर घोषित कर दिया और इस प्रकार भारत की राजनीतिक सत्ता पर अंग्रेजो का हस्तक्षेप प्रारम्भ हुआ। अंग्रेज़ों की इस तीव्र गति के साथ बढ़ती हुई सैन्य शक्ति तथा भारत की राजनीति में अनावश्यक हस्तक्षेप से विचलित होकर दिल्ली के मुग़ल सम्राट शाह आलम (1759–1803) ने अपने नायब वज़ीर तथा अवध के सूबेदार नवाब शुजाउद्दौला, बनारस के राजा चेत सिंह तथा बंगाल के नवाब मीर कासिम के साथ एक गुप्त मंत्रणा की कि किस प्रकार भारत को अंग्रेजों के शिकंजे से मुक्त कराया जाये और उनको बंगाल की खाड़ी में खदड़ने की एक बृहद योजना तैयार की गयी । जिसके तहत सन 1764 में अवध और बिहार की सीमा पर बक्सर के मैदान में मुग़ल शाही सेना और मुनरों के नेतृत्व में अंग्रेजों की फ़ौज के मध्य एक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें नवाब शुजाउद्दौला को पराजय का मुंह देखना पड़ा।

मेरे पूर्वज पंडित लक्ष्मी नारायण कौल शर्ग़ा जो उस समय नवाब की मुख्य पत्नी बहू बेगम की शाही घुड़सवारों की टुकड़ी के सेनानायक थे ने किसी प्रकार नवाब शुजाउद्दौला को युद्ध भूमि से अपने सुरक्षा घेरे में सकुशल फर्रूख़ाबाद पहुंचाया जहां उनकी जागीरें थीं। उस समय फ़र्रूख़ाबाद सामरिक दृष्टि से एक बहुत ही महत्वपूर्ण इलाका था, जहां युद्ध के लिये भाड़े के सैनिकों की भर्ती होती थी। वहां एक पुराना किला था जिसमें गोला–बारूद का भण्डार रहता था। इसी किले में नवाब शुजाउद्दौला को छुपा कर रखा गया था ताकि अंग्रेज़ उन्हें गिरफ़्तार करके फांसी न दे दें। इस किले पर उस समय पंडित लक्ष्मी नारायण कौल शर्गा का पूर्ण नियंत्रण था। बहू बेंगम उनके इस वीरता पूर्ण कार्य से बहुत अधिक प्रसन्न और प्रभावित हुई और उन्होने पंडित लक्ष्मी नारायण कौल शर्गा को 200 चाँदी के सिक्के वसीके के रूप में पुश्त दर पुश्त देने का फरमान जारी किया । वह बहुत समझदार और दूरदर्शी महिला थी। जिनके प्रयासो से नवाब शुजाउद्दौला को अवध का सिंहासन पुनः प्राप्त हो सका पर बहू बेगम और अंग्रेजो के मध्य हुई सन्धि के अनुसार अवध में नवाब के कार्य कलापों पर दृष्टि रखने के लिये अंग्रेज़ रेज़ीडेन्ट को तैनात कर दिया गया। इस महत्वपूर्ण घटना के पश्चात भारत में अंगेंजों ने जितने भी युद्ध लड़े उन सब में अवध के नवाबों ने अंगेजों का धन और बल से साथ दिया जिसके कारण वह सम्पूर्ण भारत में अपनी विजय पताका लहराने में सफल हो सके अन्यथा भारत का इतिहास कदाचित कुछ और होता। आज भी सरकार द्वारा शर्ग़ा ख़ानदान के हर सदस्य को यह शाही वसीका दिया जाता है। जिसकी पुष्टि पिक्चर गैलरी में स्थित वसीका आफ़िस के अति गोपनीय दस्तावेज़ों से की जा सकती है।

फ़र्रूख़ाबाद के उस समय के सामरिक महत्व को समझने के लिये हमें उसके गौरवशाली इतिहास पर दृष्टि डालना परम आवश्यक है। प्राचीनकाल में यह सारा क्षेत्र

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से बहुत अधिक सम्पन्न था। हमारे धर्मग्रन्थ रामायण की नायिका सीता जी तथा महाभारत की नायिका द्रोपदी का जन्म इसी क्षेत्र में हुआ था। पूर्व वैदिक काल में यह क्षेत्र सोमवंशी राजा ययति के राज्य का एक भाग था। इसी राजा ययति के कनिष्ठ राजा पुरू की 14वीं पीढ़ी में हुए राजा शकुन्तल भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। महाभारत काल में इस क्षेत्र को पंचाल प्रदेश कहा जाता था।

फ़र्रूख़ाबाद नगर का अस्तित्व आज से लगभग 4200 वर्ष पूर्व महाभारत काल में दुर्योधन द्वारा पाण्डवों का विनाश करने हेतु बनाये गये लाक्षाग्रह से उनके तथा माता कुन्ति के बच निकलने तथा तत्कालीन पंचाल देश के गंगाघाट पर बने राजा द्रुपद के किले के दक्षिण में शस्त्र गुरू द्रोणाचार्य के निवास स्थान तथा राक्षस बाकासुर के निवास स्थान के मध्य मीष्मपुर के नाम से प्रकाश में आया जहां पाण्डव अज्ञातवास के समय रहे थे। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार सन् 1714 ई0 में मोहम्मद बंगश खां ने दिल्ली के तत्कालीन मुग़ल सम्राट फ़र्रूख़सियर (1713–1719) के नाम पर इस क्षेत्र का नाम फ़र्रूख़ाबाद रख दिया जो एक बहादुर पठान सेनानायक था और जिसको सन् 1713 में फ़र्रूख़सियर ने नवाब की उपाधि से सम्मानित किया था और जागीर के रूप में 12 गांव दिये थे। उसी ने फ़र्रूख़ाबाद में एक किले का निमार्ण कराया और मुग़ल सम्राट को विभिन्न युद्धों में जमकर मदद करी।

उसने कालकाखेड़ा में अपने लिये भव्य हवेली बनवायी और उस गांव का नाम बदल कर मोहम्मदाबाद रख दिया। यह क्षेत्र मुग़ल काल में पठानों का गढ़ रहा। जिनका मुख्य कार्य भाड़े के सैनिकों के रूप में विभिन्न राजाओं तथा नवाबों के लिये युद्ध लड़ना होता था। वह इसी उद्देश्य के लिये अफ़ग़ानिस्तान के विभिन्न नगरों से
कबीलों के रूप में भारत आते थे। नवाब मोहम्मद बंगश खां के वंशज अमजद अली खां बंगश प्रसिद्ध सरोदवादक हैं।

नवाब शुजाउद्दौला की 26 जनवरी सन् 1775 को 46 वर्ष की आयु में हृदय गति रूक जाने से मृत्यु हो गयी। जिसके पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र नवाब आसफ़उद्दौला अवध के शासक बने जिन्होने फ़ैजाबाद के स्थान पर लखनऊ को अपनी राजधानी बनाया। जिसके कारण अंग्रेंज फ़ौजी, अफसरों तथा उनके परिवारों का लखनऊ में आगमन प्रारम्भ हुआ। उस समय लखनऊ नगर लगभग 22 गांवो का एक झुण्ड था जो आपस में काफ़ी दूरी पर बसे हुए थे। नवाब आसफउद्दौला ने दौलत ख़ाने में अपना डेरा जमाया तो वही निकट गोमती नदी के उत्तरी किनारे पर अंग्रेजों ने अपनी छावनी बनाई जहाँ सिपाहियों के रहने के लिये झोपड़ियाँ बनाई गयीं। उस समय गोमती नदी को पार करने के लिये कोई पुल नहीं था और गोमती के उस पार किसी प्रकार की कोई आबादी नहीं थी। नवाब आसफ़उद्दौला की पत्नी बेगम शमशुल निसा बहुत अधिक सुन्दर महिला थीं जिनकी जागीर की सुरक्षा के लिये बहू बेगम ने अपने ख़ास विश्वासपात्र मेरे पूर्वज पंडित लक्ष्मी नारायण कौल शर्गा तथा उनके अनुज भ्राता पंडित निरंजन दास कौल शर्ग़ा को तैनात किया और इस प्रकार मेरे दोनों पूर्वजों का फ़ैज़ाबाद से लखनऊ आना हुआ और वह अपने परिवारों सहित रानी कटरा मुहल्ले में रहने लगे। नवाब आसफ़उद्दौला के अपनी पत्नी शमसुल निसा बेगम के साथ कभी भी मधुर सम्बन्ध नही रहे क्योकि नवाब को कुछ दूसरा शौक था जिससे आजिज होकर बेंगम शमसुल निसां ने कम्पनी के तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्स को एक गुप्त संदेश भेजा कि उनके रहने के लिए किसी अन्य स्थान पर उचित व्यवस्था करा दी जाय जिसके पश्चात उनके रहने के लिये अंग्रेजों ने इलाहाबाद में उचित व्यवस्था कर दी जो उस समय अवध की सीमा के बाहर था।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

नवाब आसफ़उद्दौला की लम्बी बीमारी के बाद 21 सितम्बर सन् 1797 को मृत्यु हो गयी जिसके पश्चात कुछ चाटुकारों ने वज़ीर अली को उनके उत्तराधिकारी के रूप में अवध के राज सिंहासन पर बैठा दिया पर कम्पनी के गर्वनर जनरल सर जॉन शोर ने अपनी गुप्त सूचना के आधार पर उसको नवाब आसफ़उद्दौला का पुत्र मानने से इन्कार कर दिया और उसके स्थान पर बनारस से नवाब आसफ़उद्दौला के सौतले भाई नवाब साआदत अली खां को सन 1798 में लाकर अवध का शासक बना दिया। नवाब सआदतअली खां पूर्व में विद्रोह करके पहले आगरा फिर बनारस चले गये थे।

नवाब साआदतअली खां अंग्रेजों के इस कृत्य से इतने अधिक प्रसन्न और प्रभावित हुए जैसे मानो बिल्ली के भाग्य से छीकां टूटा हो उन्होने अपनी दरियादिली दिखाते हुए सन 1801 में लार्ड रिचर्ड वेल्सले के साथ एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये और आधा अवध अंग्रेजों के नाम लिख दिया जिससे अंग्रेजों के हौसले और अधिक बुलन्द हो गये। अंग्रेजों ने इस सुनहरे अवसर को अपने पक्ष में भरपूर प्रयोग करने तथा अवध में अपनी सैन्य शक्ति को और अधिक शक्तिशाली तथा प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से नवाब सआदतअली खां के सम्मुख एक बड़ी छावनी निर्माण करने के लिये भूखण्ड उपलब्ध कराने का प्रस्ताव पेश कर दिया ताकि वह हथियार तथा गोला बारूद रखने के लिये कमरे, घोड़ों को रखने के लिये बड़े अस्तबल, अंग्रेंज फ़ौजी अफसरों के लिये बड़े पक्के मकान और सैनिको के लिये बैरकों इत्यादि का सुव्यवस्थित तरीकें से निर्माण सम्भव हो सके। इस सम्बन्ध में एक गोपनीय पत्र अवध के रेजीडेन्ट कर्नल जॉन कौलिन्स ने कलकत्ते में कम्पनी के गर्वनर जनरल को भी लिखा। नवाब सआदतअली खां उस समय नगर से दूर गोमती पार मड़ियाँव शिकार खेलने के लिये जाते थे जो एक उबड़ खाबड़ इलाका था और जहां जंगली जानवरों का बराबर आतंक बना रहता था।

नवाब सआदतअली खां ने सन 1807 में अंग्रजों को इस स्थान पर छावनी बनाने का फरमान जारी कर दिया और अपने आवास के लिये फ्रांसीसी फ़ौजी अफ़सर मेजर जर्नल क्लाड मार्टिन से पूर्व में गोमती नदी के तट पर स्थित उनका महल क्रय कर लिया जिसके लिये क्लाड मार्टिन को काफ़ी नज़राना और शुकराना भी दिया गया और उसकी खिदमत के लिये चार कसी हुई कनीज़ो को भी भेजा गया जो ठीक प्रकार से उनका ख्याल रख सके। नवाब साआदत अली खां ने इस महल का नाम अपनी मां रानी छतर कुंवर के नाम पर छतर मंजिल रख दिया।

नवाब सआदतअली खां को अंग्रेजों का कुछ अधिक पक्षधर होने के नाते एक षड़यंत्र के तहत 11 जुलाई सन् 1814 की मध्य रात्रि को जहर दे दिया गया जिससे उनकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र नवाब गाज़ी उद्दीन हैदर अवध के शासक बने जिन्होने तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड हेस्टिंस के कहने पर अपने को एक स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और दिल्ली से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। 9 अक्टूबर सन 1819 को उन्होने अपनी विधिवत ताज पोशी की और अपने नाम से सिक्के जारी कर दिये। यही से एक प्रकार से अवध के पतन की कहानी प्रारम्भ हुई।

जब सन् 1848 में लार्ड डलहौज़ी गर्वनर जनरल बने तो उन्होने सम्पूर्ण भारत पर एक मात्र अंग्रेजों का शासन स्थापित करने की कार्य योजना बनाई। जिसके तहत 1849 में उन्होने कर्नल स्लीमन को रेज़ीडेन्ट बनाकर लखनऊ भेजा उसकी रिपोर्ट के आधार पर अवध के अधिकरण की योजना तैयार की गई। जिसको अन्जाम देने के लिये जनरल आउटरम को सन 1856 में रेजीडेन्ट बनाकर लखनऊ भेजा गया और फ़ौज की कई टुकड़ियां लखनऊ के लिये रवाना की गयी ताकि किसी प्रकार की गड़बड़ी से समय रहते प्रभावशाली ढंग से निपटा जा सके। 3 फरवरी सन् 1856 को अवध के अन्तिम शासक नवाब वाजिद अली शाह को गद्दी छोड़ने का नोटिस दे दिया गया और 7 फरवरी सन्

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

1856 को उनको फ़ौज के कड़े पहरे में लखनऊ से कलकत्ते के लिये रवाना कर दिया गया जहां उन्हें फोर्ट विलियम्स में नज़रबन्द कर दिया गया।

यहां पर विशेष रूप से यह बात ध्यान देने के योग्य है कि लखनऊ उस समय भारत के कुछ चुनिन्दा प्रमुख नगरों में से एक था और एक मोटे अनुमान के अनुसार इस नगर की आबादी लगभग 7 लाख थी। यदि वास्तव में यह एक जन विद्रोह का रूप धारण करती तो अंग्रेजों का बच पाना बहुत कठित हो जाता पर ऐसा किन्ही कारणों से सम्भव नही हो सका ।

अब यही एक बहुत बड़ा यक्ष प्रश्न है कि नवाब वाजिद अली शाह द्वारा 7 फरवरी 1856 को गद्दी छोड़ने और जनता द्वारा 30 मई 1857 को अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह करने के मध्य के अन्तराल में लखनऊ में क्या हुआ। यह एक बहुत बड़ा रहस्य है जिस पर अभी भी पर्दा पड़ा हुआ है। मेरे पूर्वज पंडित दुर्गा प्रसाद शर्ग़ा जो फ़ारसी भाषा के विद्वान थे और जिनको अंग्रेजी भाषा का भी अच्छा खासा व्यवहारिक ज्ञान था नवाब वाजिद अली शाह की मां मलका किश्वर के खास मुशीरकार थे। पंडित दुर्गा प्रसाद शर्गा मलका किश्वर के गोपनीय संदेश लेकर कम्पनी के आला अधिकारियों से भेंट करने के लिये अक्सर कलकत्ता जाया करते थे और इस नाते उन्हें थोड़ी बहुत अंग्रेज़ी बोलने और समझने का अभ्यास हो गया था।

मलका किश्वर ने उनसे गुप्त मंत्रणा कर यह निश्चय किया कि एक प्रतिनिधिमण्डल लन्दन जाकर महारानी विक्टोरिया के सम्मुख अपना पक्ष प्रस्तुत करे और किसी प्रकार लानत मलामत तथा महारानी का मालीदन करके नवाब वाजिद अली शाह को या फिर उनके पुत्र को अवध का राज सिहांसन वापस दिलाया जाये मलका किश्वर के नेतृत्व में 110 सदस्यों का यह प्रतिनिधि मण्डल 15 जून सन् 1856 को पानी के जहाज़ से लन्दन के लिये रवाना हुआ जिसके मुख्य सदस्य थे पंडित दुर्गा प्रसाद शर्गा, मसीउद्दीन खान, मुन्शी मीर मुहम्मद सफ़ी, हाजीउल रहमान और नवाब काजिम अली शाह के ख़ास शहज़ादे मिर्ज़ा मुहम्मद हामिद अली। जब यह प्रतिनिधिमण्डल लन्दन में अपने कार्य में जुटा हुआ था तो वहां कलकत्ते में सिपाहियों द्वारा विद्रोह किये जाने की सूचना पहुंची जिससे क्रोध मे आकार महारानी विक्टोरिया ने इस प्रतिनिधिमण्डल से मिलने से एकदम मना कर दिया। निराश होकर यह प्रतिनिधिमण्डल लन्दन से भारत लौट आया। वापसी में फ्रांस में मलका किश्वर का लगभग 55 वर्ष की आयु में निधन हो गया।

पंडित दुर्गा प्रसाद शर्ग़ा लखनऊ वापस सकुशल लौट आये पर उनका शाही वसीका अंग्रेज़ो ने बन्द कर दिया जो पुनः सन 1859 में लखनऊ के तत्कालीन सिटी मजिस्ट्रेट के आदेश पर चालू हो सका। यहां पर

सुधी पाठकों को इस बात की विस्तार से समीक्षा करनी चाहिये कि जिस समय अंग्रेजों ने नवाब वाजिद अली शाह उनकी शाही बेंगमो तथा उनके शाही परिवार के अन्य सदस्यों को लखनऊ से कलकत्ता रवाना किया तब बेंगम हज़रत महल कहां थीं और उनको अंग्रजों ने लखनऊ में किस लिये छोड़ दिया था जबकि नवाब वाजिद अली शाह के अनेक दरबारी भी अपनी वफ़ादारी दिखाने के लिये उनके साथ कलकत्ता चले गये थे। जिनमें कुछ कश्मीरी पंडित भी शामिल थे जो अपने परिजनो को कश्मीरी मुहल्ले में राम भरोसे छोड़ कर नवाब के ग़म में कलकत्ता चले गये जहां बाद में इन लोगो ने वहां तवायफों से शादियां करके अपने घर बसा लिये।

क्या बेंगम हज़रत महल और नवाब वाजिद अली शाह के मध्य सम्बन्धों में इतनी खटास आ चुकी थी कि उन्होने बेंगम हज़रत महल को अपने साथ कलकत्ता ले जाना उचित नहीं समझा। ऐसा भी कहा जाता है कि बेगम हज़रत महल के सम्बन्ध महल के दरोग़ा मम्मू खां से हो गये थे और बिरजीज़ क़द्र उन्हीं का पुत्र था। पर इसका कोई पुख़्ता प्रमाण नहीं है क्योंकि उस समय डी0एन0ए0 टेस्ट कराने की सुविधा उपलब्ध नहीं

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

थी और परी ख़ाने के उन्मुक्त और स्वछन्द वातावरण में 365 बेगमों में कौन कब किसके साथ सम्बन्ध बना रही है यह पता कर पाना बहुत कठिन था। उस ज़माने के लबड़–झबड़ के माहौल में किसी तवायफ़ का किसी दरबारी के साथ हम बिस्तर होना बड़े फ़क्र की बात मानी जाती थी। लखनऊ में बहुत सी मशहूर तवायफ़ें थीं जिनको बाद में इसी प्रकार बेगम का दर्जा हासिल हुआ और समाज में इज़्ज़त मिली। नवाब वाजिद अली शाह ने स्वयं अपनी पुस्तक परीखाना में इसकी बड़ी साफ़गोई के साथ चर्चा की है।

वास्तव में बहुत कम लोग यह जानते हैं कि बेंगम हज़रत महल नेपाली मूल की एक राजपूत महिला थी जिनका जन्म सन् 1830 के आस पास हुआ था और जिनको काठमांडू से लखनऊ में वेश्या वृत्ति कराने के उद्देश्य से सन् 1844 में लाकर मन्सूरनगर के एक मकान में रखा गया था क्योंकि वहीं से थोड़ी दूर पर चावल वाली गली और चौक के बाज़ार में लखनऊ की मशहूर तवायफ़ों के आलीशान कोठे थे। जहाँ नित्य सांयकाल हुस्न और शबाब की महफ़िलें सजती थीं। उनसे शुरू में मुजरा भी करवाया गया, उस समय नवाब के गुमाश्ते महल मे तैनात जासूसो के मार्फ़त नवाब को खुश करने तथा इनाम आदि पाने के चक्कर में नगर की सुन्दर बालाओं को महल में पहुंचाते थे। इसी क्रम में इस राजपूत बाला को भी कैसरबाग के परी महल में सन् 1847 में पहुंचा दिया गया। जहां नवाब वाजिद अली शाह ने उसके गठे हुए सुडौल शरीर, हुस्न और शबाब पर मोहित होकर उनको बेंगम हज़रत महल के ख़िताब से नवाज़ा।

सब जानते है कि प्रचीन समय से भारत के विभिन्न नगरों में देहव्यापार के लिये नेपाल से हिन्दू बालाओं को लाया जाता रहा है जो क्रम आज भी जारी है। इन असहाय बालाओं के पुनर्वास के लिये कई गैरसरकारी संगठन एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है और जिसमें नेपाली मूल की प्रसिद्ध अभिनेत्री मनीषा कोईराला भी एक प्रमुख भूमिका निभा रही है। वंही दूसरी ओर इस धन्धे में भूतपूर्व सोवियंत संघ के कुछ गणराज्यों की बालाये भी अपने हाथ जमकर अज़मा रही हैं। प्रायः 1857 की क्रान्ति की शुरूआत 10 मई को मेरठ से मानी जाती है और मंगल पांडेय को इस क्रान्ति का नायक बताया जाता है। पर प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता आमीर खान ने कई वर्ष शोध और अनुसंधान करने के पश्चात मंगल पांडेय के जीवन चरित्र पर जब फिल्म का निर्माण किया तो वह बुरी तरह से पिट गयी और जनता ने उसे एकदम नकार दिया क्योकि उसमें मंगल पांडेय को एक तवायफ़ के साथ संगत करते चित्रित किया गया है यही नही मंगल पांडेय के जन्म स्थान के बारे में भी मतभेद है। जबकि यह सब जानते है कि फौजी प्राचीन काल से अपना मानसिक तनाव दूर करने तथा अपने शरीर की थकावट को मिटाने के लिये तवायफ़ो का सहारा लेते रहे है।

ब्रिटिश शासन काल में जब चौक में मुजरों की महाफिले सजती थीं तो अनेक फ़ौजियों को शाम के समय चौक की गलियों में घूमते और वहां तवायफ़ो के कोठो पर चढ़ते और फ़ारिंग होने के बाद उतरते देखा जा सकता था। वहीं कई इतिहासकार मंगल पांडे के स्थान पर बिन्दा तिवारी नामक सिपाही को स्वतंत्रता संग्राम का पहला नायक मानते है कनाईपाढ़ा राय के अनुसार बिन्दा तिवारी बैरकपुर की 47वीं नेटिव इन्फैन्ट्री के सैनिक थे, जिन्होने सन् 1824 में अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह किया और कई अंग्रेज़ फ़ौजी अफसरो को मौत के घाट उतार दिया। उनको बाद में अंग्रेज़ों ने पकड़ कर पेड़ से लटका कर फांसी दे दी थी।

बैरकपुर की छावनी में बिन्दा तिवारी के स्मारक के रूप में बना हुआ मन्दिर आज भी वहां स्थित है। 1857 की क्रान्ति को भलिभांति समझने के लिये हमे कुछ इससे जुड़ी इतिहासिक घटनाओं पर विचार मंथन करना होगा जैसे सन 1824 में 47 वीं बंगाल पैदल सेना की टुकड़ी ने बर्मा जाने से मना कर दिया था। जिसमें उनको समुद्र की यात्रा करनी थी जो उनकी धार्मिक मान्यताओं के एकदम विरूद्ध थी, क्योकि उस समय सेना में

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

अधिकतर राजपूत और ब्राह्मण भर्ती हुआ करते थे। सन 1856 में जो नयी एनफील्ड राइफिल प्रयोग में लाई गयी उसमें भरी जाने वाली गोली के खोखे पर चिकनाई लगाई गयी थी। ताकि वह आसानी से बन्दूक की नली में जा सके। इसमे कोई सन्देह नही कि यह चिकनाई गाय और सुअर की चर्बी होती थी। जिसे मुंह से फाड़ना पड़ता था जिसने वास्तव में भारतीय सैनिकों को अंग्रेज़ों के विरूद्ध विद्रोह करने को उकसाया।

वही यह भी बहुत आश्चर्य की बात है कि हमारे देश के इतिहासकारों ने दक्षिण भारत में भारतीय सैनिकों द्वारा वैलूर फ़ोर्ट में 10 जुलाई 1806 को किये गये विद्रोह का कहीं कोई ज़िक्र नहीं किया। 14वी सदी के इस किले में भारतीय सैनिकों ने प्रातः पौ फटते ही धावा बोलकर 14 अंग्रेज़ फ़ौजी अफ़सरों तथा 100 अंग्रेज़ सैनिकों को हलाक कर दिया था। जिसमें वहां किले में नज़र बन्द टीपू सुल्तान के तीन पुत्रों ने भी साथ दिया था। जिसको कुचलने के लिये अंग्रेज़ों को अरकाट से ब्रिटिश सेना की टुकड़ियां बुलानी पड़ीं थी और जिसमें 350 भारतीय सैनिक शहीद हुए थे और मद्रास प्रेसीडेन्सी के तत्कालीन गवर्नर विलियम बेन्टिग को अंग्रेज़ों को इंग्लैण्ड वापस बुलाना पड़ा था।

पी.जी.ओ. टेलर, माईकिल एडवर्ड व हर प्रसाद चटोपाध्याय का कहना है कि क्रान्ति की शुरूआत 10 मई को मेरठ में नहीं परन्तु 3 मई 1857 को लखनऊ में हुई जब अवध के चीफ कमिश्नर सर हेनरी लारेंस के पास एक पत्र लाया गया जो सातवीं रेजिमेन्ट के एक सैनिक ने48 वी स्थानीय सेना को लिखा था जिसमें धर्म की रक्षा के लिये कुछ भी कुर्बानी देने के लिये तैयार रहने को कहा गया था। सर हेनरी लारेन्स के यह पत्र पढ़ने के बाद एकदम होश फ़ाख़्ता हो गये और वह तुरन्त घबराकर मड़ियांव में स्थित सैनिक छावनी पहुंचे जहां उन्होने सैनिकों से तुरन्त अपने हथियार डालने को कहा।

जब वहां से सर हेनरी लारेन्स वापस लौटे तेा यह अफवाह फैल गयी कि उन्होनें 14 सैनिकों को फांसी दे दी है तब आठवीं घुड़सवार पलटन के कुछ सैनिको ने इसका बदला लेने की योजना बनाई। जब कैप्टन पार्कसन परेड की सलामी लेने के लिये गया तो गंगादीन नाम का एक पासी सैनिक जेा अचूक निशानेबाज़ था अपनी टुकड़ी से निकला और पार्कसन पर गोली दाग़ दीं। पार्कसन गोली लगने से ज़ख्मी हो गया और उसने अपने बचाव में तलवार निकाल ली पर इसी बीच कई सैनिक उस पर टूट पड़े और उसका काम तमाम कर दिया। अंग्रेजो ने इस घटना के लिये 20 भारतीय सैनिको को पकड़ा और उन्हें फांसी दे दी गयी। यहीं से अवध में क्रान्ति का बिगुल बजा पर कुशल नेतृत्व के अभाव में इसका संचालन ठीक प्रकार से सम्भव नही हो सका।

नगर में व्याप्त इस ऊहापोह की स्थिति में बेंगम हज़रत महल ने कुछ अपने राजपूत वफ़ादार सिपाहसालारों के साथ क़ैसरबाग में स्थित चौलक्खी कोठी में एक गुप्त मंत्रणा की जिनमें राजा मान सिंह, राजा बेनी माधो तथा राजा जियालाल सिंह ने प्रमुख भूमिका निभायी जिनको तिलक लगा कर और हाथ में नंगी तलवार उठा कर जयभवानी के उद्घोष के साथ बेंगम हज़रत महल ने मृत्यु तक अंग्रेजों के विरूद्ध लोहा लेने की शपथ दिलाई तथा नेतृत्व के शून्य को भरने के लिये अपने 8 वर्ष के नाबालिग़ पुत्र बिरजीज़ कद्र को अवध का बादशाह घोषित कर दिया तथा शासन की कमान अपने हाथो में ले ली। एक विशेष बात यह रही कि यह क्रान्ति उत्तर भारत के कुछ प्रमुख नगरों तक ही सीमित रही और मध्य तथा दक्षिण भारत पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा कि सूचना प्रोद्योगिकी के अभाव में कौन कहां क्या कर रहा है इसकी ठीक से जानकारी नही मिल पाती थी। जब बेंगम हज़रत महल को अपनी पराजय सुनिश्चित लगने लगी तो उन्होने सुलह सफाई के लिये राजा मान सिंह को जनरल आउट्रम के पास अपना दूत बना कर भेजा पर जनरल आउट्रम ने उनके प्रस्ताव को एक सिरे से ख़ारिज कर दिया जिसके बाद बेंगम हज़रत महल अपने पुत्र बिरजीज़ कद्र के साथ बहराईच होते हुए अपने मायके नेपाल सन् 1860 में पलायन कर

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गयी जहां उनकी काठमांडू में क्षय रोग से ग्रसित हो जाने के कारण 7 अप्रैल सन् 1879 को 49 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गयी। नेपाल नरेश सुरेन्द्र विक्रम शाह (1847–1881) ने उनको नेपाली नागरिक होने के नाते 100 रूपये माहवार पेंशन बांध दी थी।

अंग्रेज़ इस क्रान्ति को बड़ी आसानी से कुचलने में इसलिये भी अधिक सफ़ल हुए कि हमारे देश के ही अनेक राजाओं, महाराजाओं, नवाबों, मनसबदारों, ताल्लुकदारों तथा बड़े जमीनदारों ने उनका खुलकर साथ दिया जो अपने अपने हित साधने में लगे हुए थे। यह साफ़ दर्शाता है कि भारत उस समय दो खेमों में बंटा हुआ था। तब इस क्रान्ति को स्वतंत्रता संग्राम कहना कहां तक उचित हैं जैसा कभी कभी पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज़ मुशर्रफ़ कश्मीर के सम्बन्ध में हल्के मूड में कह देते है। क्या नक्सली आन्दोलन या उत्तर पूर्वी राज्यों के उग्र जन आक्रोश को इसी कसौटी पर कसा जा सकता है। इतने बड़े विशाल देश में यदि उसके किसी क्षेत्र में कुछ लोग आवेग में आकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये बवाल काटने लगे तो उसको स्वतंत्रता संग्राम कहना कहां तक उचित और न्यायसंगत है।

वास्तव में 1858 में भारत में पूर्ण रूप से ब्रिटिश शासन स्थापित होने के पश्चात भारतवासियों ने उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिये जब इंग्लैड जाना प्रारम्भ किया तब उनमें राष्ट्र, समाज और नागरिक अधिकार क्या होते है इसकी कल्पना जागृत हुई। अपने अधिकारों की रक्षा के लिये सर्वप्रथम सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इग्लैण्ड से स्नातक की उपाधि प्राप्त किये हुए 72 भारतवासियों को लेकर एक संस्था बनाई जिसके माध्यम से अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरूद्ध लड़ाई लड़ने की कार्य योजना बनी और बाल गंगाधर तिलक जैसे व्यक्ति ने स्वराज हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है जैसा नारा दिया तथा नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने युवकों का आवाहन करते हुए कहा तुम मुझे खून दो मैं तुमको आजादी दूंगा।

भारत के महान वीर सपूत विनायक दामोदर सावरकर जिनका जन्म 28 मई सन् 1883 को नासिक के निकट भागपुर गांव में हुआ था पूना के फर्ग्यूसन कालेज से स्नातक की उपाधि लेने के पश्चात सन 1906 में कानून की शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से इंग्लैण्ड गयें जहां उन्होनें ग्रे इन में प्रवेश लिया। वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने सन् 1907 में लन्दन में प्रथम बार 1857 की क्रान्ति की 50 वीं वर्षगाठ मनायी और उसकों देश का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जिसने समूचे ब्रिटिश साम्राज्य में सनसनी फैला दी। उन्होनें अंग्रेजी में ''फ़र्स्ट इन्डियन फ्रीडम स्ट्रगल'' शीर्षक से एक किताब भी प्रकाशित कराई जिसको अंग्रेजों ने जब्त कर लिया। विनायक दामोदर सावरकर पर अंग्रेजों ने देश द्रोह का मुकदमा चलाया और उनको काले पानी की सजा सुनाकर अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में बने सैल्यूलर जेल में बन्द कर दिया।

सावरकर को 13 मार्च्र 1910 को लन्दन के विक्टोरिया रेलवे स्टेशन से गिरफ़्तार किया गया और जब उनको पानी के जहाज से भारत लाया जा रहा था तो वह जहाज के शौचालय के छेद से निकल भागे और ब्रिटिश चैनल को तैरते हुए फ्रांस पहुँच गये जहां की पुलिस की मदद से सन 1911 में उनको पुनः गिरफ्तार करके बम्बई लाया गया पर इस घटना ने उन्हें भारत के युवाओं की आंखों का तारा तथा भारत की युवा शक्ति का प्रेरणा स्रोत बना दिया।

1857 की क्रान्ति को स्वतंत्रता संग्राम की संज्ञा देने के पक्ष और विपक्ष में अनेक तर्क और कुतर्क दिये जा सकते है पर यह कटु सत्य है कि इससे पूर्व इस प्रकार की बात कहने का साहस कोई नहीं जुटा सका। अब इस क्रान्ति के लगभग 150 वर्ष पश्चात देश के इतिहासकारों में पुनः इसको लेकर बहस छिड़ गयी है और वह अपनी अपनी विचारधारा के अनुसार इसकी व्याख्या करने में जुट गये है। पर इस विषय पर गम्भीरता

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

पूर्वक पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर शोध करने की आवश्यकता है ताकि जनता के सम्मुख इसको सही परिप्रेक्ष्य में बिना किसी लाग लपेट के प्रस्तुत किया जा सके।

हम अपने इतिहास के प्रति कितने सजग है इसका अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि देश के सन् 1947 में स्वतंत्र होने के पश्चात लखनऊ का गज़ेटियर 1956–1957 में प्रकाशित हुआ था तब से आज तक इसे पुनः प्रकाशित करने की किसी ने आवश्यकता नहीं समझी। हम आज तक यह नहीं पता लगा पाये कि आखिर नेता जी सुभाष चन्द्र बोस कहां गायब हो गये। क्या उन्हें आसमान निगल गया या धरती खा गयी। मौके का फायदा उठा कर कुछ फ़र्ज़ी लोग स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बन बैठे जबकि वास्तव में उनका स्वतंत्रता संग्राम से कभी दूर–दूर तक कोई लेना–देना नहीं रहा।

इसी प्रकार फतेहपुर जनपद में खजुआ से लगभग 4 किमी दूर मुग़ल रोड के किनारे स्थित इमली के पेड़ पर आज से ठीक 148 वर्ष पूर्व 28 अप्रैल सन् 1858 को ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध छापामार युद्ध लड़ने वाले ठाकुर
जोधा सिंह अटईया व उनके 51 साथियों को मिस्टर ग्वीइन ने फांसी पर लटका दिया था। बबर्रता की चरम सीमा यह रही कि सभी 52 शवों का अन्तिम संस्कार करना तो दूर उन्हें पेड़ से उतारा भी नही गया।

आज तक किसी ने इन अमर शहीदों के नाम व पता भी जानने की तकलीफ़ गवारा नहीं की वहीं सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि अब कुछ फर्जी लोगों को उनके भव्य स्मारक निर्माण करा कर न केवल उनको महिमामण्डित किया जा रहा है अपितु आने वाली पीढ़ियों को इतिहास के प्रति गुमराह भी किया जा रहा है। किसी शायर ने ठीक ही लिखा है।

इन रास्तों पर भीड़ है मंजिल नहीं पता,
खुद अपनी राह बना कर तो देखिये।
धरती यह चूम लेगी आसमां एक दिन,
इस स्वप्न को आंखों में बसा कर तो देखिये।

(डॉ0 बैकुण्ठ नाथ शर्ग़ा)
मनोहर निवास,
कश्मीरी मुहल्ला,

लखनऊ–226003

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com